श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

उद्धव गीता (11.19)

स्व धाम प्रस्थान को देखो हो रहे श्री कृष्ण तैयार।
उद्धृत किए उद्धव समक्ष अद्भुत अनमोल उद्गार।।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्

एकादशः स्कन्धः

॥ अथ एकोनविं(म्)शोऽध्यायः ॥

श्रीभगवानुवाच

यो विद्याश्रुतसम्पन्न, आत्मवान् नानुमानिकः ।
मायामात्रमिदं(ञ्) ज्ञात्वा, ज्ञानं(ञ्) च मयि सं(न्)न्यसेत् ॥ 1॥

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं- उद्धव जी! जिसने उपनिषदादि शास्त्रों के श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर लिया है, जो श्रोत्रिय एवं ब्रह्मनिष्ठ है, जिसका निश्चय केवल युक्तियों और अनुमानों पर ही निर्भर नहीं करता, दूसरे शब्दों में-जो केवल परोक्ष ज्ञानी नहीं हैं, वह यह जानकार कि सम्पूर्ण द्वैतप्रपंच और इसकी निवृत्ति का साधन वृतिज्ञान मायामात्र है, उन्हें मुझमें लीन कर दे, वे दोनों ही मुझ आत्मा में अध्यस्त हैं, ऐसा जान ले।

ज्ञानिनस्त्वहमेवेष्टः(स्), स्वार्थो हेतुश्च सं(म्)मतः।
स्वर्गश्चैवापवर्गश्च, नान्योऽर्थो मदृते प्रियः ॥ 2॥

ज्ञानी पुरुष का अभीष्ट पदार्थ मैं ही हूँ, उसके साधन-साध्य, स्वर्ग और अपवर्ग भी मैं ही हूँ, मेरे अतिरिक्त और किसी भी पदार्थ से वह प्रेम नहीं करता।

ज्ञानविज्ञानसं(म्)सिद्धाः, पदं(म्) श्रेष्ठं(वँ) विदुर्मम ।

ज्ञानी प्रियतमोऽतो मे, ज्ञानेनासौ बिभर्ति माम् ॥ 3॥

जो ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न सिद्धपुरुष हैं, वे ही मेरे वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। इसीलिये ज्ञानी पुरुष मुझे सबसे प्रिय हैं। उद्धव जी! ज्ञानी पुरुष अपने ज्ञान के द्वारा निरन्तर मुझे अपने अन्तःकरण में धारण करता है।

तपस्तीर्थं(ञ्) जपो दानं(म्), पवित्राणीतराणि च ।

नालं(ङ्) कुर्वन्ति तां(म्) सिद्धिं(यँ), या ज्ञानकलया कृता ॥ 4॥

तत्त्वज्ञान के लेशमात्र का उदय होने से जो सिद्धि प्राप्त होती है, वह तपस्या, तीर्थ, जप, दान अथवा अन्तःकरण शुद्धि के और किसी भी साधन से पूर्णतया नहीं हो सकती।

तस्माज्ज्ञानेन सहितं(ञ्), ज्ञात्वा स्वात्मानमुद्धव ।

ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो, भज मां(म्) भक्तिभावितः ॥ 5॥

इसलिए मेरे प्यारे उद्धव! तुम ज्ञान के सहित अपने आत्मस्वरूप को जान लो और फिर ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर भक्तिभाव से मेरा भजन करो।

ज्ञानविज्ञानयज्ञेन, मामिष्ट्वाऽऽत्मानमात्मनि ।

सर्वयज्ञपतिं(म्) मां(वँ) वै, सं(म्)सिद्धिं(म्) मुनयोऽगमन् ॥ 6॥

बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने ज्ञान-विज्ञानरूप यज्ञ के द्वारा अपने अन्तःकरण में मुझ सब यज्ञों के अधिपति आत्मा का यजन करके परम सिद्धि प्राप्त की है।

त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारो,

मायान्तराऽऽपतति नाद्यपवर्गयोर्यत् ।

जन्मादयोऽस्य यदमी तव तस्य किं(म्) स्यु-

राद्यन्तयोर्यदसतोऽस्ति तदेव मध्ये ॥ 7॥

उद्धव! अध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक-इन तीन विकारों की समष्टि ही शरीर है और वह सर्वथा तुम्हारे आश्रित है। यह पहले नहीं था और अन्त में नहीं रहेगा; केवल बीच में ही दीख रहा है। इसलिये इसे जादू के खेल के समान माया ही समझना चाहिये। इसके जो जन्मना, रहना, बढ़ना, बदलना, घटना और नष्ट होना-ये छः भावविकार हैं, इनसे तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यही नहीं, वे

विकार उसके भी नहीं हैं; क्योंकि वह स्वयं असत् है। असत् वस्तु तो पहले नहीं थी, बाद में भी नहीं रहेगी; इसलिये बीच में भी उसका कोई अस्तित्व नहीं होता।

उद्धव उवाच

ज्ञानं(वँ) विशुद्धं(वँ) विपुलं(यँ) यथैत-

द्वैराग्यविज्ञानयुतं(म्) पुराणम् ।

आख्याहि विश्वेश्वर विश्वमूर्ते,

त्वद्भक्तियोगं(ञ्) च महद्विमृग्यम् ॥ 8॥

उद्धव जी ने कहा- 'विश्वरूप परमात्मन्! आप ही विश्व के स्वामी हैं। आपका यह वैराग्य और विज्ञान से युक्त सनातन एवं विशुद्ध ज्ञान जिस प्रकार सुदृढ़ हो जाये, उसी प्रकार मुझे स्पष्ट करके समझाइये और उस अपने भक्तियोग का भी वर्णन कीजिये, जिसे ब्रह्मा आदि महापुरुष भी ढूँढा करते हैं।

तापत्रयेणाभिहतस्य घोरे,

सं(न्)तप्यमानस्य भवाध्वनीश ।

पश्यामि नान्यच्छरणं(न्) तवाङ्घ्रि-

द्वन्द्वातपत्रादमृताभिवर्षात् ॥ 9॥

मेरे स्वामी! जो पुरुष इस संसार के विकट मार्ग में तीनों तापों के थपेड़े खा रहे हैं और भीतर-बाहर जल-भुन रहे हैं, उनके लिये आपके अमृतवर्षी युगल चरणारविन्दों की छत्र-छाया के अतिरिक और कोई भी आश्रय नहीं दीखता।

दष्टं(ञ्) जनं(म्) सं(म्)पतितं(म्) बिलेऽस्मिन्,

कालाहिना क्षुद्रसुखोरुतर्षम् ।

समुद्धरैनं(ङ्) कृपयाऽऽपवर्ग्यैर्-

वचोभिरासि(ञ्)च महानुभाव ॥ 10॥

महानुभाव! आपका यह अपना सेवक अँधेरे कुएँ में पड़ा हुआ है, कालरूपी सर्प ने इसे डस रखा है; फिर भी विषयों के क्षुद्र सुख-लोगों की तीव्र तृष्णा मिटती नहीं, बढ़ती ही जा रही है। आप कृपा करके इसका उद्धार कीजिये और इससे मुक्त करने वाली वाणी की सुधा-धारा से इसे सराबोर कर दीजिये।

श्रीभगवानुवाच

इत्थमेतत् पुरा राजा, भीष्मं(न्) धर्मभृतां(वँ) वरम् ।

अजातशत्रुः(फ्) पप्रच्छ, सर्वेषां(न्) नोऽनुशृण्वताम् ॥ 11॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- उद्धव जी! जो प्रश्न तुमने मुझसे किया है, यही प्रश्न धर्मराज युधिष्ठिर ने धार्मिक शिरोमणि भीष्म पितामह से किया था। उस समय हम सभी लोग वहाँ विद्यमान थे।

निवृत्ते भारते युद्धे, सुहृन्निधनविह्वलः ।

श्रुत्वा धर्मान् बहून् पश्चान्- मोक्षधर्मानपृच्छत॥ 12॥

जब भारतीय महायुद्ध समाप्त हो चुका था और धर्मराज युधिष्ठिर अपने स्वजन-सम्बन्धियों के संहार से शोक विह्वल हो रहे थे, तब उन्होंने भीष्म पितामह से बहुत-से धर्मों का विवरण सुनने के पश्चात् मोक्ष के साधनों के सम्बन्ध में प्रश्न किया था।

तानहं (न्) तेऽभिधास्यामि, देवव्रतमुखाच्छ्रुतान् ।

ज्ञानवैराग्यविज्ञान- श्रद्धाभक्त्युपबृं(म्)हितान् ॥ 13॥

उस समय भीष्म पितामह के मुख से सुने हुए मोक्षधर्म मैं तुम्हें सुनाउँगा; क्योंकि वे ज्ञान, वैराग्य, विज्ञान, श्रद्धा और भक्ति के भावों से परिपूर्ण हैं।

नवैकादश पं(ञ्)च त्रीन्, भावान् भूतेषु येन वै ।

ईक्षेताथैकमप्येषु, तज्ज्ञानं(म्) मम निश्चितम् ॥ 14॥

उद्धव जी! जिस ज्ञान से प्रकृति, पुरुष, महत्तत्त्व,, अहंकार और पंच-तन्मात्रा-ये नौ, पाँच ज्ञानेद्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और एक मन-ये ग्यारह, पाँच महाभूत और तीन गुण अर्थात् इन अट्ठाईस तत्त्वों को ब्रह्मा से लेकर तृण तक सम्पूर्ण कार्यों में देखा जाता है और इनमें भी एक परमात्मतत्त्व को अनुगत रूप से देखा जाता है-वह परोक्ष ज्ञान है, ऐसा मेरा निश्चय है।

एतदेव हि विज्ञानं(न्), न तथैकेन येन यत् ।

स्थित्युत्पत्त्यप्ययान् पश्येद् , भावानां(न्) त्रिगुणात्मनाम् ॥ 15॥

जब जिस एक तत्त्व से अनुगत एकात्मक तत्त्वों को पहले देखता था, उनको पहले के समान न देखे, किन्तु एक परम कारण ब्रह्म को ही देखे, तब यही निश्चित विज्ञान (अपरोक्ष ज्ञान) कहा जाता है। (इस ज्ञान और विज्ञान को प्राप्त करने की युक्ति यह है कि) यह शरीर आदि जितने भी त्रिगुणात्मक सावयव पदार्थ हैं, उनकी स्थिति, उत्पत्ति और प्रलय का विचार करे।

आदावन्ते च मध्ये च, सृज्यात् सृज्यं(यँ) यदन्वियात् ।

पुनस्तत्प्रतिसं(ङ्)क्रामे, यच्छिष्येत तदेव सत् ॥ 16॥

जो तत्त्ववस्तु सृष्टि के प्रारम्भ में और अन्त में कारणरूप से स्थित रहती है, वही मध्य में भी रहती है और वही प्रतीयमान कार्य से प्रतीयमान कार्यान्तर में अनुगत भी होती है। फिर उन कार्यों का प्रलय अथवा बाध होने पर उसके साक्षी एवं अधिष्ठानरूप से शेष रह जाती है। वही सत्य परमार्थ वस्तु है, ऐसा समझे।

श्रुतिः(फ्) प्रत्यक्षमैतिह्य- मनुमानं(ञ्) चतुष्टयम् ।

प्रमाणेष्वनवस्थानाद्, विकल्पात् स विरज्यते ॥ 17॥

श्रुति, प्रत्यक्ष, एतिह्य (महापुरुषों में प्रसिद्धि) और अनुमान-प्रमाणों में यह चार मुख्य हैं। इनकी कसौटी पर कसने से दृश्यप्रपंच अस्थिर, नश्वर एवं विकारी होने के कारण सत्य सिद्ध नहीं होता, इसलिये विवेकी पुरुष इस विविध कल्पनारूप अथवा शब्दमात्र प्रपंच से विरक्त हो जाता है।

कर्मणां(म्) परिणामित्वा- दाविरि(ञ्)चादमं(ङ्)गलम्।

विपश्चिन्नश्वरं(म्) पश्येद- दृष्टमपि दृष्टवत् ॥ 18॥

विवेकी पुरुष को चाहिये कि वह स्वर्गादि फल देने वाले यज्ञादि कर्मों के परिणामी-नश्वर होने के कारण ब्रह्मलोक पर्यन्त स्वर्गादि सुख-अदृष्ट को भी इस प्रत्यक्ष विषय-सुख के समान ही अमंगल, दुःखदायी एवं नाशवान् समझे।

भक्तियोगः(फ्) पुरैवोक्तः(फ्), प्रीयमाणाय तेऽनघ ।

पुनश्च कथयिष्यामि, मद्भक्तेः(ख्) कारणं(म्) परम् ॥ 19॥

निष्पाप उद्धव जी! भक्तियोग का वर्णन मैं तुम्हें पहले ही सुना चुका हूँ; परन्तु उसमें तुम्हारी बहुत प्रीति है, इसलिये मैं तुम्हें फिर से भक्ति प्राप्त होने का श्रेष्ठ साधन बतलाता हूँ।

श्रद्धामृतकथायां(म्) मे, शश्वन्मदनुकीर्तनम् ।

परिनिष्ठा च पूजायां(म्), स्तुतिभिः(स्) स्तवनं(म्) मम ॥ 20॥

जो मेरी भक्ति प्राप्त करना चाहता हो, वह मेरी अमृतमयी कथा में श्रद्धा रखे; निरन्तर मेरे गुण-लीला और नामों का सकीर्तन करे; मेरी पूजा में अत्यन्त निष्ठा रखे और स्तोत्रों के द्वारा मेरी स्तुति करे।

आदरः(फ्) परिचर्यायां(म्), सर्वाङ्गैरभिवन्दनम् ।

मद्भक्तपूजाभ्यधिका, सर्वभूतेषु मन्मतिः ॥ 21॥

मेरी सेवा-पूजा में प्रेम रखे और सामने साष्टांग लोटकर प्रणाम करे; मेरे भक्तों की पूजा मेरी पूजा से बढ़कर करे और समस्त प्राणियों में मुझे ही देखे।

मदर्थेष्वं(ङ्)गचेष्टा च, वचसा मद्गुणेरणम् ।

मय्यर्पणं(ञ्) च मनसः(स्) सर्वकामविवर्जनम् ॥ 22॥

अपने एक-एक अंग की चेष्टा केवल मेरे ही लिये करे, वाणी से मेरे ही गुणों का गान करे और अपना मन भी मुझे ही अर्पित कर दे तथा सारी कामनाएँ छोड़ दे।

मदर्थेऽर्थपरित्यागो, भोगस्य च सुखस्य च ।

इष्टं(न्) दत्तं(म्) हुतं(ञ्) जप्तं(म्),मदर्थं(यँ) यद् व्रतं(न्) तपः ॥ 23॥

मेरे लिये धन, भोग और प्राप्त सुख का भी परित्याग कर दे और जो कुछ यज्ञ, दान, हवन, जप, व्रत और तप किया जाये, वह सब मेरे लिये ही करे।

एवं(न्) धर्मैर्मनुष्याणा- मुद्धवात्मनिवेदिनाम् ।

मयि सं(ञ्)जायते भक्तिः(स्), कोऽन्योऽर्थोऽस्यावशिष्यते ॥ 24॥

उद्धव जी! जो मनुष्य इन धर्मों का पालन करते हैं और मेरे प्रति आत्म-निवेदन कर देते हैं, उनके हृदय में मेरी प्रेममयी भक्ति का उदय होता है और जिसे मेरी भक्ति प्राप्त हो गयी, उसके लिये और किस दूसरी वस्तु का प्राप्त होना शेष रह जाता है ?

यदाऽऽत्मन्यर्पितं(ञ्) चित्तं(म्), शान्तं(म्) सत्त्वोपबृं(म्)हितम्।

धर्मं(ञ्) ज्ञानं(म्) सवैराग्य- मैश्वर्यं(ञ्) चाभिपद्यते ॥ 25॥

इस प्रकार के धर्मों का पालन करने से चित्त में जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है और वह शान्त होकर आत्मा में लग जाता है, उस समय साधक को धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य स्वयं ही प्राप्त हो जाते हैं।

यदर्पितं(न्) तद् विकल्पे, इन्द्रियैः(फ्) परिधावति ।

रजस्वलं(ञ्) चासन्निष्ठं(ञ्), चित्तं(वँ) विद्धि विपर्ययम् ॥ 26॥

यह संसार विविध कल्पनाओं से भरपूर है। सच पूछो तो इसका नाम तो है, किन्तु कोई वस्तु नहीं है। जब चित्त इसमें लगा दिया जाता है, तब इन्द्रियों के साथ इधर-उधर भटकने लगता है। इस प्रकार चित्त में रजोगुण की बाढ़ आ जाती है, वह असत् वस्तु में लग जाता है और उसके धर्म, ज्ञान आदि तो लुप्त हो ही जाते हैं, वह अधर्म, अज्ञान और मोह का भी घर बन जाता है।

धर्मो मद्भक्तिकृत् प्रोक्तो, ज्ञानं(ञ्) चैकात्म्यदर्शनम् ।

गुणेष्वसं(ङ्)गो वैराग्य- मैश्वर्यं(ञ्) चाणिमादयः ॥ 27॥

उद्धव! जिससे मेरी भक्ति हो, वही धर्म है; जिससे ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार हो, वही ज्ञान है; विषयों से असंग-निर्लेप रहन ही वैराग्य है और अणिमादि सिद्धियाँ ही ऐश्वर्य हैं।

*उद्धव उवाच

यमः(ख्) कतिविधः(फ्) प्रोक्तो, नियमो वारिकर्शन ।

कः(श्) शमः(ख्) को दमः(ख्) *कृष्ण, का तिति*क्षा धृतिः(फ्) प्रभो ॥ 28॥

उद्धव जी ने कहा- 'रिपुसूदन! यम और नियम कितने प्रकार के हैं? श्रीकृष्ण! शम क्या है? दम क्या है?

किं(न्) दानं(ङ्) किं(न्) तपः(श्) शौर्यं(ङ्), किं(म्) *सत्यमृतमु*च्यते ।

कस्त्यागः(ख्) किं(न्) धनं(ञ्) चेष्टं(ङ्), को *यज्ञः(ख्) का च *दक्षिणा ॥ 29॥

प्रभो! तितिक्षा और धैर्य क्या है? आप मुझे दान, तपस्या, शूरता, सत्य और ऋत का भी स्वरूप बतलाइये। त्याग क्या है? अभीष्ट धन कौन-सा है? यज्ञ किसे कहते हैं? और दक्षिणा क्या वस्तु है?

पुंसः(ख्) किं(म्)स्वि*द् बलं(म्) श्रीम*न् , भगो लाभ*श्च केशव ।

का *विद्या ह्रीः(फ्) परा का श्रीः(ख्),किं(म्) सुखं(न्) दुःखमेव च ॥ 30॥

श्रीमान् केशव! पुरुष का सच्चा बल क्या है? भग किसे कहते हैं? और लाभ क्या वस्तु है? उत्तम विद्या, लज्जा, श्री तथा सुख और दुःख क्या है ?

कः(फ्) *पण्डितः(ख्) *कश्च मूर्खः(ख्), कः(फ्) *पन्था *उत्पथ*श्च कः ।

कः(स्) स्वर्गो नरकः(ख्) कः(स्)स्वित् , को *बन्धुरुत किं(ङ्) गृहम् ॥ 31॥

पण्डित और मूर्ख के लक्षण क्या हैं? सुमार्ग और कुमार्ग का क्या लक्षण है? स्वर्ग और नरक क्या है? भाई-बन्धु किसे मानना चाहिये? और घर क्या है ?

क आढ्यः(ख्) को द*रिद्रो वा,कृपणः(ख्) कः(ख्) क *ईश्वरः ।

एतान् *प्रश्नान् म*म ब्रूहि, विपरीतां(म्)श्च *सत्पते ॥ 32॥

धनवान् और निर्धन किसे कहते हैं? कृपण कौन है? और ईश्वर किसे कहते हैं? भक्तवत्सल प्रभो! आप मेरे इन प्रश्नों का उत्तर दिजिये और साथ ही इनके विरोधी भावों की भी व्याख्या कीजिये।

श्रीभगवानुवाच

अहिं(म्)सा *सत्य*मस्तेय- मसं(ङ्)गो ह्रीरसं(ञ्)चयः।

आस्ति*क्यं(म्) ब्रह्मचर्यं(ञ्) च, मौनं(म्) स्थैर्यं(ङ्) क्षमाभयम् ॥ 33॥

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा- ‘यम’   बारह हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), असंगता, लज्जा, असंचय, आस्तिकता, ब्रह्मचर्य, मौन, स्थिरता, क्षमा और अभय।

शौचं(ञ्) जपस्तपो होमः(श्), श्रद्धाऽऽतिथ्यं(म्) मदर्चनम् ।

तीर्थाटनं(म्) परार्थेहा, तुष्टिराचार्यसेवनम् ॥ 34॥

नियमों की संख्या भी बारह ही है। शौच (बाहरी पवित्रता और भीतरी पवित्रता), जप, तप, हवन, श्रद्धा, अतिथि सेवा, मेरी पूजा, तीर्थयात्रा, परोपकार की चेष्टा, सन्तोष और गुरुसेवा।

एते यमाः(स्) सनियमा, उभयोर्द्वादश स्मृताः ।

पुं(म्)सामुपासितास्तात, यथाकामं(न्) दुहन्ति हि ॥ 35॥

इस प्रकार 'यम' और 'नियम' दोनों की संख्या बारह-बारह है। वे सकाम और निष्काम दोनों प्रकार के साधकों के लिये उपयोगी हैं। उद्धव जी! जो पुरुष इनका पालन करते हैं, वे यम और नियम उनके इच्छानुसार उन्हें भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करते हैं।

शमो मन्निष्ठता बुद्धेर्- दम इन्द्रियसं(यँ)यमः।

तितिक्षा दुःखसं(म्) मर्षो, जिह्वोपस्थजयो धृतिः ॥ 36॥

बुद्धि का मुझमें लग जाना ही 'शम' है। इन्द्रियों के संयम का नाम 'दम' है। न्याय से प्राप्त दुःख के सहने का नाम 'तितिक्षा' है। जिह्वा और ज्ञानेद्रिय पर विजय प्राप्त करना 'धैर्य' है।

दण्डन्यासः(फ्) परं(न्) दानं(ङ्), कामत्यागस्तपः(स्) स्मृतम् ।

स्वभावविजयः(श्) शौर्यं(म्), सत्यं(ञ्) च समदर्शनम् ॥ 37॥

किसी से द्रोह न करना, सबको अभय देना 'दान' है। कामनाओं का त्याग करना ही 'तप' है। अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त करना ही 'शूरता' है। सर्वत्र समस्वरूप, सत्यस्वरूप परमात्मा का दर्शन ही 'सत्य' है।

ऋतं(ञ्) च सूनृता वाणी, कविभिः(फ्) परिकीर्तिता ।

कर्मस्वसं(ङ्)गमः(श्) शौचं(न्), त्यागः(स्) सं(न्)न्यास उच्यते ॥ 38॥

इसी प्रकार सत्य और मधुर भाषण को ही महात्माओं ने 'ऋत' कहा है। कर्मों में आसक्त न होना ही 'शौच' है। कामनाओं का त्याग ही सच्चा 'संन्यास' है।

धर्म इष्टं(न्) धनं(न्) नृणां(यँ), यज्ञोऽहं(म्) भगवत्तमः ।

दक्षिणा ज्ञानसन्देशः(फ्), प्राणायामः(फ्) परं(म्) बलम् ॥ 39॥

धर्म ही मनुष्यों का अभीष्ट 'धन' है। मैं परमेश्वर ही 'यज्ञ' हूँ। ज्ञान का उपदेश देना ही 'दक्षिणा' है। प्राणायाम ही श्रेष्ठ 'बल' है।

भगो म ऐश्वरो भावो, लाभो मद्भक्तिरुत्तमः ।

विद्याऽऽत्मनि भिदाबाधो, जुगुप्सा ह्रीरकर्मसु ॥ 40॥

मेरा ऐश्वर्य ही 'भग' है, मेरी श्रेष्ठ भक्ति ही उत्तम 'लाभ' है, सच्ची 'विद्या' वही है, जिससे ब्रह्म और आत्मा का भेद मिट जाता है। पाप करने से घृणा होने का नाम ही 'लज्जा' है।

श्रीर्गुणा नैरपेक्ष्याद्याः(स्), सुखं(न्) दुःखसुखात्ययः ।

दुःखं(ङ्) कामसुखापेक्षा, पण्डितो बन्धमोक्षवित् ॥ 41॥

निरपेक्षता आदि गुण ही शरीर का सच्चा सौन्दर्य-'श्री' है, दुःख और सुख दोनों की भावना का सदा के लिये नष्ट हो जाना ही 'सुख' है। विषय भोगों की कामना ही 'दुःख' है। जो बन्धन और मोक्ष का तत्त्व जानता है, वही 'पण्डित' है।

मूर्खो देहाद्यहं(म्)बुद्धिः(फ्), पन्था मन्निगमः(स्) स्मृतः ।

उत्पथश्चित्तविक्षेपः(स्), स्वर्गः(स्) सत्त्वगुणोदयः ॥ 42॥

शरीर आदि में जिसका मैंपन है, वही 'मूर्ख' है। जो संसार की ओर से निवृत करके मुझे प्राप्त करा देता है, वही सच्चा 'सुमार्ग' है। चित्त की बहिर्मुखता ही 'कुमार्ग' है। सत्त्वगुण की वृद्धि ही स्वर्ग है।

नरकस्तमउन्नाहो, बन्धुर्गुरुरहं(म्) सखे ।

गृहं(म्) शरीरं(म्) मानुष्यं(ङ्), गुणाढ्यो ह्याढ्य उच्यते ॥ 43॥

सखे! तमोगुण की वृद्धि ही'नरकहै। गुरु ही सच्चा 'भाई-बन्धु' है और वह गुरु मैं हूँ।यह मनुष्य शरीर ही सच्चा 'घर है तथा सच्चा 'धनी' वह है,जो गुणों से सम्पन्न है, जिसके पास गुणों का खजाना है।

दरिद्रो यस्त्वसन्तुष्टः(ख्), कृपणो योऽजितेन्द्रियः ।

गुणेष्वसक्तधीरीशो, गुणसं(ङ्)गो विपर्ययः ॥ 44॥

जिसके चित्त में असन्तोष है, अभाव का बोध है, वही 'दरिद्र' है। जो जितेन्द्रिय नहीं है, वही 'कृपण' है। समर्थ, स्वतन्त्र और 'ईश्वर' वह है, जिसकी चित्तवृत्ति विषयों में आसक्त नहीं है। इसके विपरीत जो विषयों में आसक्त है, वही सर्वथा 'असमर्थ' है।

एत उद्धव ते प्रश्नाः(स्), सर्वे साधु निरूपिताः ।

किं(वँ) वर्णितेन बहुना, लक्षणं(ङ्) गुणदोषयोः ।

गुणदोषदृशिर्दोषो, गुणस्तूभयवर्जितः ॥ 45॥

प्यारे उद्धव! तुमने जितने प्रश्न पूछे थे, उनका उत्तर मैंने दे दिया; इनको समझ लेना मोक्ष-मार्ग के लिये सहायक है। मैं तुम्हें गुण और दोषों का लक्षण अलग-अलग कहाँ तक बताऊँ? सबका सारांश इतने में समझ लो कि गुणों और दोषों पर दृष्टि जाना ही सबसे बड़ा दोष है और गुण-दोषों पर दृष्टि न जाकर अपने शान्त निःसंकल्प स्वरूप में स्थित रहे-वही सबसे बड़ा गुण है।

इति* श्रीम*द्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्)

सं(म्)हितायामेकादश*स्क*न्धे एकोनविं(म्)शोऽध्यायः॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुद*च्यते

पूर्ण*स्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशि*ष्यते ॥

ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥